जैन दर्शन के मूल तत्वों का संक्षिप्त स्वरूप

साध्वी धर्मशीला
एम. ए., साहित्यरत्न

जैन दर्शन में षट्द्रव्य, सात तत्व या नव पदार्थ माने गये हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये षट्द्रव्य हैं। जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष ये सात तत्व हैं। इन सात तत्वों में पुण्य, पाप का समावेश करने से नव पदार्थ बन जाते हैं। षट्द्रव्य, सात तत्व और नवपदार्थ में मुख्य दो तत्व हैं। जीव और अजीव। इन्हीं के संयोग और वियोग पर सब तत्वों की रचना होती है। जीव का प्रतिपक्षी अजीव है, जीव चेतनावान-ज्ञान-दर्शनयुक्त है। अजीव अचेतन है और ज्ञान दर्शन रहित है।

जैन, बौद्ध और सांख्य दर्शन के अनुसार जगत के मूल में चेतन और अचेतन ऐसे दो तत्व हैं। जैन दर्शन में उसे ही जीव और अजीव कहा है। सांख्य दर्शन ने उसे पुरुष और प्रकृति कहा है तथा बौद्ध दर्शन ने जिसे नाम और रूप कहा है।

जीवों की संख्या अनन्तानंत है। वे जितने हैं उतने ही रहते हैं, न घटते हैं, न बढ़ते हैं। कोई भी जीव नया पैदा नहीं होता है, न किसी का विनाश होता है। तत्वतः प्रत्येक जीव अजन्मा और अविनाशी है। उन अनन्तानन्त जीवों में कई जीव अशुद्ध रूप में और कई शुद्ध रूप में पाये जाते हैं। जो अशुद्ध रूप में हैं उन्हें संसारी जीव और शुद्ध रूप वाले को मुक्त जीव कहते हैं– "संसारिणोमुक्ताश्च"–तत्वार्थ सूत्र।

मुक्त होने पर जीव की कभी अजीव से संबंध होने की संभावना नहीं रहती। जीव की यही वह अवस्था है जो उसका म लक्ष्य होती है। और इसी अवस्था को प्राप्त करने के लिये परजीवात्मा सदा प्रयत्नशील रहता है।

जीव के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए आचार्य नेमीचन्द्रजी ने द्रव्यसंग्रह में लिखा है कि :

"तिक्काले चदुपाणा इन्दिअ बलमाउ आणपाणो य।
ववहारो सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स।"

अर्थात् व्यावहारिक दृष्टि से तीनों कालों में जिसके इन्द्रिय, बलः मनोबल, वचनबल, कायबल : आयु और श्वासोच्छ्वास ये चार प्राण पाये जाते हैं वह जीव कहलाता है। परन्तु निश्चयात्मक दृष्टि से जिसमें चेतना–उपयोग पाई जाती है वह जीव कहलाता है।

जीव के लिये और भी कहा है–

जीवोउवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिणामो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ।।

अर्थात् जीव उपयोगमय : ज्ञान दर्शन युक्त : अमूर्त, स्वकर्मों का कर्ता, अपनी देह का परिणाम वाला कर्मफल का भोग करनेवाला होता है। कर्मरहित, सिद्ध अवस्था प्राप्त करने पर वह नियम से ऊर्ध्व गतिवाला होता है।

जीव : आत्मा : ज्ञानदर्शनमय तथा सूक्ष्म होने के कारण अमूर्त है। उसका कोई रूप नहीं होता, इसलिये इन्द्रियातीत : अगोचर : है। किन्तु जब तक रागद्वेषादि कषायरूप परिणामों के कारण अजीव : पुद्गल : शरीर से उसका संबंध है तब तक वह शरीरधारी होने से मूर्त : स्पर्श-गंधादि गुण वाला : रहता है। दूसरे शब्दों में शुद्धावस्था में मूर्त : चाक्षुक : होता है।

आत्मा में संकोच-प्रसारण की शक्ति होती है। अतः वह सूक्ष्म एवं स्थूल शरीरों में प्रवेश करके उन शरीरों में परिणाम वाला होने में समर्थ होता है। वह स्व-कर्म का कर्ता और उनके फल का भोक्ता भी है। किन्तु जब कषाय रूप परिणामों के भार से हल्का हो जाता है तब ऊर्ध्वगमन करके सिद्धावस्था को प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार मिट्टी से सनी तुम्बी मिट्टी के भार के कारण जल में डूब जाती है। परन्तु ज्योंहीं उसका मिट्टी का भार हल्का हो जाता है, वह ऊर्ध्वगति से पानी के ऊपर आ जाती है, क्योंकि यह उसका स्वभाव है। उसी प्रकार जीवात्मा भी कर्मों के भार से भारी होने के कारण संसाररूपी जलोदधि में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डूबा रहता है, परन्तु कर्मों का भार हल्का हो जाने पर : शुद्धावस्था में : वह भी ऊर्ध्वगति करता हुआ सिद्धावस्था को प्राप्त करके शुद्ध अवस्था युक्त जीव बन जाता है।

संसारी जीव इन्द्रिय संपन्न होते हैं। अतः इन्द्रियों की दृष्टि से भी उसका वर्गीकरण किया जा सकता है। इन्द्रियाँ पाँच होती हैं—१. स्पर्शन, २. रसना, ३. घ्राण, ४. चक्षु, ५. कर्ण। इन्द्रियों का यह क्रम वस्तुतः बड़ा वैज्ञानिक है। कर्णेन्द्रियवाला अवश्य ही पाँचों इन्द्रियों का स्वामी होता है। चक्षुइन्द्रियवाला चार इन्द्रिय-युक्त होगा उसको कर्णेन्द्रिय नहीं होती है। इस प्रकार अन्य इन्द्रियों के विषयों में भी समझना चाहिये। अतः इन्द्रियों की दृष्टि से संसारी जीव पाँच प्रकार का ही होता है—

१. एकेन्द्रिय जीव—इसे केवल स्पर्शन इन्द्रिय ही होगी। अन्य इन्द्रियाँ नहीं होतीं। जैसे पेड़, पौधे इत्यादि। इन्हें स्थावर जीव की संज्ञा दी गई है। २. द्वीन्द्रिय जीव, ३. त्रिइन्द्रिय जीव ४. चतुरिन्द्रिय जीव व ५. पंचेन्द्रिय जीव। इन चार प्रकार के जीवों को त्रस जीव कहते हैं पंचेन्द्रिय जीवों में भी कुछ ऐसे होते हैं जो मनवाले होते हैं उन्हें समनस्क या संज्ञी-जीव कहते हैं। किन्तु कुछ जीव बिना मन के भी होते हैं, वे अमनस्क या असंज्ञी जीव कहलाते हैं।

अजीव तत्व जीव तत्व से विपरीत स्वरूपवाला है। आत्मा के गुणों से विहीन जितने भी पदार्थ अस्तित्व में हैं वे सब अजीव तत्व के अंतर्गत आ जाते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल अजीव हैं। धर्म गतिसहायक तत्व है। अधर्म स्थिति सहायक तत्व है। आकाश स्थान देनेवाला है। काल समय बताने वाला और पुद्गल जो सभी कुछ आंखों से दिखाई दे उसे पुद्गल कहते हैं।

पुद्गल रूपी है और जीवात्मा से अनित्य संबंध होता है। दर्शन की भाषा में जीवात्मा से संबंध करने वाले पुद्गलों को कार्माण या कर्मवर्गणा या कर्म कहते हैं। इन कर्मों का कार्य है आत्मा के स्वाभाविक गुणों पर आवरण में पड़ जाने पर जीवात्मा अपने शुद्ध रूप को विस्मरण करके संसार में परिभ्रमण करता है, आवागमन करता है।

पुण्य तत्व—जिन कर्मों से पुण्य का बंध हो वह पुण्य तत्व है। उसके नव भेद हैं।

पापतत्व—जिन कर्मों से पाप का बंध हो वह पाप तत्व है। उसके १८ भेद हैं।

आस्रव तत्व—जब आत्मा में इन पौद्गलिक कर्मों का आना प्रारंभ होता है, तब इस आगमन को दार्शनिक भाषा में आस्रव तत्व की संज्ञा दी जाती है। इसके कारण ही जीव अजीव तत्वों का संबंध होता है। और जब तक यह संबंध बना रहता है तब तक जीव संसारावस्था में ही रहता है।

संवरतत्व—जीवात्मा अपनी साधना द्वारा कर्मों के आगमन को रोकने का प्रयास करता है तो उस रुकने का नाम है "संवर"। किन्तु वह संवर तत्व आत्मा के साथ बंधे हुवे कर्मों को क्षय करने में समर्थ नहीं होता।

निर्जरा तत्व—पूर्वबद्ध कर्मों का अभाव करने के लिये तपश्चर्या की आवश्यकता होती है और तपस्या द्वारा ही उन कर्मों का धीरे-धीरे अभाव होता है। कर्मों का क्षय करना याने निर्जरा है।

बंध—आस्रव के कारण आने वाले कर्म आत्मा से चिपटते हैं, बंधते जाते हैं। आत्मा इन कर्मों के बन्धन में निश्चित कालस्थिति तक बंधा रहता है। इसी बंधन का नाम बन्ध तत्व है।

मोक्ष—निर्जरा करते-करते जब कर्मों का आत्यन्तिक अभाव या विनाश हो जाता है तब आत्मा बंधन से मुक्ति प्राप्त करता है। इस अवस्था का नाम है—मोक्ष। मोक्ष की प्राप्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य है। यही परमानन्दावस्था है। जिसे पाने के बाद कुछ पाना बाकी नहीं रहता है। जिसे पाने के लिये सभी धर्मों के सभी प्रयत्न हैं। मानवमात्र को इसी की प्राप्ति के लिये सभी साधना और सभी आराधना है। सभी धर्मानुष्ठान इसी की प्राप्ति के लिये होते हैं। मोक्ष ही आत्मा की स्वाभाविक अवस्था है। यह सत्, चित्, आनन्द की अवस्था है। यही जीवात्मा के ब्रह्म-भाव की प्राप्ति है। संक्षेप में विशुद्ध आत्म स्वरूप को प्रकट करने को मोक्ष कहते हैं।

जैन दर्शन के इन नव तत्वों का यह संक्षेप में निरूपण है।

□

जिस व्यक्ति ने मनुष्य-जीवन पाकर जितना अधिक आत्मविश्वास सम्पादित कर लिया है, वह उतना अधिक शान्तिपूर्वक सन्मार्ग पर आरूढ़ हो सकता है।

—राजेन्द्र सूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org